प्रत्येयता

भारतीय दर्शन के अधिकांश प्रकरणों में जब धर्म और अध्यात्म की बात आती है और मानवमात्र को जीवन के सार्थक मार्ग पर प्रशस्त करने हेतु पहली कड़ी के रूप में यह स्पष्टता प्राप्त करने की आवश्यकता बताई जाती है की वो भ्रान्ति को पहचाने | इस चराचर जगत में जो कुछ सामने दिखायी देता है , वो भ्रान्ति है, सत्य नहीं | मतलब हमारे चारो ओर की स्थिति, हमारे अनुभव, आवेग और सम्पूर्ण संरचना जिसमे भोग विलास से लेकर मुक्ति के कथाकथित मार्ग यथा कर्मकांड सम्मिलित है, को एक ऐसा भ्रमजाल बताया जाता है, जिसकी तुलना सदैव रेगिस्तान में दूरस्थ स्थान पर जल के भ्रम से किया जाता है | इसे मृग मरीचिका कहा गया है | यह स्थिति रोचक इसलिए है की भ्रम स्वप्न का अंश नहीं होता | हमारे सजग और साकांक्ष स्थिति में, जगे हुए में, दिन के स्पष्ट प्रकाश में समतल भूमि, सूर्य की प्रखर किरण और वायु के कारण, ताप के कारण जो भ्रम उत्पन्न होता है, वो जल की प्रतीति कराता | जन्मना हमें अपने इन्द्रियों पर भरोसा दिलाया जाता और अब हम उन इन्द्रियों का उपयोग को उद्यत होते तो भ्रम को स्पष्ट कर दिया जाता | बताया जाता की यह तो आभासिक भी नहीं सम्पूर्ण भ्रान्तिरूप है | अधिकाँश मनुष्य के लिए इस तथ्य को मान लेना अपने आप में नयी भ्रान्ति की दुविधा उत्पन्न करता | संकट भी उत्पन्न करता |

इसका सबसे बड़ा कारण यह है की दिशा निर्देशक यन्त्र के अभाव में मृगमरीचिका से जल प्राप्त करने हेतु चला व्यक्ति कभी पुनः जीवन में लौटकर उसी स्थान पर नहीं आ पाता जहां से उसने जल के भ्रम का अनुभव किया था | जल तो मिलता नहीं, और वो स्थिति, वो सहजता, वो सुख जो जीवन के उस बिंदु तक था, जहाँ से भ्रान्ति उत्पन्न हुई थी, वो भी खो जाती | फलतः मनुष्य और भी उलझ जाता है |

इस तीसरे बिंदु की कोई परिकल्पना भी नहीं करता जीवन में | सर्वथा अनदेखी अवस्था होती है | जहाँ थे, जहाँ से चले थे, वो भूत था | जहाँ की परिकल्पना या आभासिक जल प्राप्ति हेतु भ्रान्ति में चले, वो भविष्य था और अब यह यात्रा वर्तमान है | भविष्य की ओर कदम बढ़ाते ही भूतकाल छूट गया | अब तक एक की खोज थी, भविष्य तलाशने चले थे, पर जैसे ही आगे बढे, जितना आगे बढे, बीते समय से जितनी दूर गए, भूतकाल का आकार भी बढ़ गया | अब तक एक समस्या थी, अब दो हो गयी |

तपते मरुभूमि में जैसे मानव अपने जीवन के वर्तमान को ना तो छोड़ आये शीतल/उष्ण भूत की ओर ले जा पाता है, और नाही भविष्य के साकार भ्रम से जल पी पाता है |

यह स्थिति 'प्रत्येयता' होती है | इसमें एक तरह से जीवन का वर्तमान, भूत और भविष्य के दो भ्रम स्थितियों के बीच विचलन उत्पन्न करता है | मानव के लिए प्रत्येक अगला कदम दुविधा उत्पन्न करने वाला होता है | इस दुविधा का दूर

प्रत्येयता

होना, अनिश्चय का तिरोहित होना जीवन में सबसे आवश्यक भी है और सबसे बड़ी उपलब्धि भी | आवश्यक यह इसलिए है जब तक यह दुविधा बनी हुई है, हम आप कोई भी सजग और साकांक्ष होकर अपनी क्षमता का पूर्ण उपयोग कर अपना अगला डेग नहीं उठा पाते | भ्रमजाल न सिर्फ गति कम कर देता है बल्कि दिशा भी बदल देता है जो कभी कभी अनर्थकारी होता क्योंकि उसमे दिशाहीनता का मूलतत्व होता है |
अतः प्रत्येयता की स्थिति में भूत और भविष्य के बीच आज के अर्थात वर्तमान के क्षण में दुविधारहित निश्चय के रथ पर आरूढ़ होकर कर्म के पथ पर मार्गस्थ हुआ जाये इस हेतु दृष्टि और दृष्टिकोण दोनों में स्पष्टतः आवश्यक है | दृष्टि अनुभव आश्रित होती है और दृष्टिकोण ज्ञानकोष से प्राप्त विज्ञान पर निर्भर होता है | जन्म के समय भी हमारी चेतना दृष्टाभाव से हमारे साथ होती है और अनुभव के भण्डार से हमारे जीव को धनी बनाती रहती है | आग से हाथ एक बार जला नहीं की दृष्टि सदा सदा के लिए स्पष्ट हो गयी की आग से बचना है | कुछ अनुभव एक बार वाले होते, कुछ अनेक बार वाले, कुछ उम्र आधारित होते, कुछ कर्म आधारित होते और कुछ भाग्य आधारित होते है | प्रत्येक जीव कि जन्म से पहले उसकी आत्मा द्वारा अनुभव करने और सीखने की जो आयोजना होती, उसी के अनुरूप दृष्टि बनती | यह थोड़ा महंगा सौदा है | कितनी चीज़ो के खुद अनुभव करोगे और फिर उससे सीखोगे भाई | जहर के स्वाद के अनुभव के बाद जीव ही नष्ट जाएगा | जीव का जीवन इतना विस्तृत और ठोस तो नहीं है की कुछ भी चाहो खुद से अनुभव कर लो |

ऐसी स्थिति में दृष्टिकोण का महत्व बढ़ जाता है | ज्ञान अर्जन की आवश्यकता और उपादेयता महती हो जाती है | ज्ञान हो गया की अमुक वस्तु विषाक्त है, जीवन का क्षरण कर सकती है, बस बात बन गयी | ज्ञान हो गया विष का | और क्या चाहिये ? परन्तु यह ज्ञान होता कैसे ? स्रोत क्या होगा ? सहज से स्वयं चल कर आएगा या प्रयास करने होंगे ? और यदि प्रयास करने होंगे तो कब और कैसे करने होंगे ? प्रश्न की सूची जितनी बड़ी है, ज्ञान प्राप्ति के विकल्प भी उतने ही ज़्यादा है | बस आवश्यकता अनेक या एक विकल्प के चयन और दृढ़ता से उस मार्ग पर आने जाने की है | दृढ़ता क्यों आवश्यक है ? इसलिए अनिवार्य है की जीव प्रत्येक जीवन में पूर्व से कुछ संस्कार लेकर आता है | कुछ अंतर्निहित ऊर्जा होती है जो उत्प्रेरणा भी प्रदान करती है और जीवन की दिशा और दशा को भी प्रभावित करती है | इसी संस्कार से वशीभूत आत्मा किसी सकारात्मक या नकारात्मक जीव स्वरुप धारण कर अपने अनुभव को परिपूर्ण करती है | एक भाई दूसरे से भिन्न होता है, परन्तु प्रत्येक मनुष्य विशिष्ट होता है | यह विशिष्टता जीवन की संरचना में अंतर्निहित होती है | ऐसे संस्कार कभी कभी विज्ञान के मार्ग पर आगे बढ़ने में बाधक होते हैं और इसलिए विद्वान के पुत्र मूर्ख और धनाढ्य के पुत्र निर्धन हो जाते है | उन्हें अवसर तो मिला परन्तु संस्कार में दृढ़ता नहीं रही फलतः ज्ञान तत्व तक नहीं पहुंच पाए और दृष्टिकोण में स्पष्टता नहीं आयी | ज्ञान का प्रकाश जीवन को आलोकित नहीं कर सका | अतः एक बार दृढ़ता से ज्ञान प्राप्त करने का मन बना ले मानव तो रास्ता एकलव्य जैसा हो या अर्जुन की तरह द्रोणाचार्य के शिष्यत्व में, निष्कर्ष समान होगा | गुरु शिष्य परंपरा के अनुरूप दृष्टिकोण के गठन में, ज्ञान के अपरिमेय

प्रत्येयता

भण्डार तक पहुंचने का एकमात्र मार्ग बचता है, जीवतत्व के अहंभाव से तत्काल मुक्ति का | स्वयं के स्वरुप को सायास विनिष्ट कर, अहंकार के भ्रमजाल से जैसे ही जीव तत्व अपने आतंरिक स्वरुप को ही मात्र पहचान ले तो बात बननी प्रारम्भ हो जाती है | जीव के शरीर में स्वयं के अहंकार से मुक्ति हेतु ऊर्जा केंद्र के रूप में 7 मुख्य, 49 उपमुख्य, 114 ऐसे केंद्र होते हैं | समस्या बस इतनी होती है की परमतत्व से अलग होने के बाद आत्मतत्व मानव के ह्रदय के पास ह्रतिपद्म स्थान पर स्थिर हो जाता है | दृष्टाभाव अपना लेता है | नीचे की यात्रा जो पृथ्वी तत्व (मूलाधार) तक होती है, वो अब जीव का स्वयं स्वरुप करता है | आत्मा साक्षी तो होती पर भागीदार नहीं होती |

इसी क्रम को उल्टा करके, एक एक करके चक्रों को भेदन करने पर जैसे ही मानव अपनी आत्मा तक पंहुचता है तो स्वयं का स्वरुप और उसका अहंकार तिरोहित होने लग जाता और चेतना शब्द ब्रह्म के ऊपर जब अजना तक पहुँचती तो आत्मा के स्वरुप के यथावत रहते भी सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का ज्ञान सहज उपलब्ध हो जाता, जैसे कालीदास को मिला था | यह ज्ञान पलक झपकते ही प्राप्त हो जाता | शक्तिपात कर गुरु इस ज्ञान तक तत्काल पहुंचाते रहे हैं समय समय पर अपने शिष्यों को |
निष्कर्ष यह है की कर्म प्रधान इस जगत में जीवात्मा को विभिन्न मार्गो में से अपने लक्ष्य तक जाने हेतु उपयुक्त मार्ग का चयन करना पड़ता है और इस हेतु स्वल्प पर सजग प्रयास करने पड़ते हैं | ऐसा कर जीवन सरल और सहज ही नहीं होता अपितु सही पथ पर भी मानव आरूढ़ रहता है |

|| इति अलम ||

न निन्दति न च स्तौति न ह्रष्यति न कुप्यति |
न ददाति न गृहाति मुक्तः सर्वत्र नीरसः ||

मोहनाथमिश्र
YOS~MIS